大学印地语专业教材

印度社会与文化

(हिन्दी में)

孙 卫 国 编

中国人民解放军外国语学院五系

二〇〇四年三月

भारतीय संस्कृति 5
भारतीय संस्कृति के निर्णायक घटक 8
भौगोलिक परिवेश 8
भारत की भौगोलिक स्थिति 10
भौगोलिक स्थिति का भारतीय जीवन पर प्रभाव 12
स्थिति, आकार तथा सीमा का प्रभाव 12
प्राकृतिक विभागों का प्रभाव 13
शब्दावली 20
अभ्यास 29
सिंधु घाटी की सभ्यता 30
सिंधु घाटी की सभ्यता की कुछ विशेषताएं 32
वैदिक संस्कृति 36
शब्दावली 44
अभ्यास 51
भारतीय समाज एवं संस्कृति की विशेषताएं 52
भारतीय समाज एवं संस्कृति की विशेषताएं 53
विविधता में एकता 59
शब्दावली 62
अभ्यास 67
कर्म तथा पुनर्जन्म 68
कर्म का अर्थ 69
कर्म तथा पुनर्जन्म का सिद्धांत 71
कर्म और भाग्य 83
कर्म के सिद्धांत का महत्व 85
कर्म-सिद्धांत में दोष 88
शब्दावली 91
अभ्यास 95
वर्ण-व्यवस्था 96

वर्ण का अर्थ...97
वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति..99
वर्ण-व्यवस्था का आधार--जन्म अथवा कर्म................ 103
विभिन्न वर्णों के कर्तव्य अथवा वर्ण-धर्म.................... 105
वर्ण-व्यवस्था की विशेषताएं.................................. 107
वर्ण-व्यवस्था का महत्व(मूलभूत सिद्धांत)..................... 109
वर्ण-व्यवस्था के दोष.. 111
वर्ण और जाति 113
शब्दावली 114
अभ्यास 117
आश्रम-व्यवस्था.. 118
आश्रमों के प्रकार.. 119
आश्रम-व्यवस्था के आधारभूत सिद्धांत 131
आश्रम-व्यवस्था का समाजशास्त्रीय महत्व..................... 134
शब्दावली 136
अभ्यास 141
संस्कार 142
संस्कारों के उद्देश्य... 142
हिंदू जीवन के मुख्य संस्कार 146
हिंदू संस्कारों का समाजशास्त्रीय महत्व 158
शब्दावली 160
अभ्यास 167
पुरुषार्थ 168
पुरुषार्थ का अर्थ.. 169
पुरुषार्थ के प्रकार.. 170
मोक्ष-प्राप्ति के विभिन्न मार्ग 178
पुरुषार्थ का समाजशात्रीय महत्व................................ 179
शब्दावली 182

अभ्यास 184
भारत में जाति-प्रथा 185
जाति का अर्थ तथा परिभाषा 185
जाति-प्रथा की विशेषताएं--संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक पक्ष187
जाति और उपजाति 191
जाति तथा वर्ण 192
जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति 194
जाति-प्रथा के कार्य(भूमिका) अथवा महत्व 202
जाति-प्रथा के दोष अथवा हानियां 202
शब्दावली 205
अभ्यास 209
जाति-प्रथा में परिवर्तन(बदलते प्रतिमान) 210
(विभिन्न युगों में जाति) 210
जाति-व्यवस्था में परिवर्तन लानेवाले कारक 216
जाति-व्यवस्था में आधुनिक परिवर्तन 219
भारत में जाति का भविष्य 222
शब्दावली 223
अभ्यास 227
हिंदू विवाह: प्रकृति, स्वरूप तथा आधुनिक परिवर्तन 228
हिंदू विवाह: एक धार्मिक संस्कार 229
हिंदू विवाह के स्वरूप 234
हिंदू विवाह के नियम 238
अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह 241
हिंदू विवाह में आधुनिक परिवर्तन 244
शब्दावली 248
अभ्यास 252
हिंदू विवाह से संबंधित समस्याएं 253
दहेज-प्रथा 253

बाल-विवाह 259
विधवा पुनर्विवाह का निषेध 262
अंतर्जातीय विवाहों पर प्रतिबंध 264
अंतर्जातीय विवाह के लाभ या औचित्य 267
शब्दावली 268
अभ्यास 269
भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मौलिक विशेषताएं 270
परंपरागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मौलिक विशेषताएं 271
दार्शनिक आधार: मौलिक विशेषताएं 272
संगठनात्मक आधार: मौलिक विशेषताएं 274
भारतीय सामाजिक व्यवस्था की विशेषताएं: नवीन आधार . 277
शब्दावली 281
अभ्यास 282

此为试读,需要完整PDF请访问: www.ertongbook.com

भारतीय संस्कृति

इस संस्कृति के विकास में जितना उत्तरापथ का योगदान है उतना ही दक्षिणा पथ का और उतना ही अरण्यवासी जन-जातियों का । भारतीय संस्कृति के विकास में आर्य, द्रविड़, यक्ष, नाग, किन्नर, शक, हूण, आभीर, गुर्जर, जाट, पारसीय, पठान, मुसलमान, ईसाइयों आदि सब का योगदान है । भारतीय जीवन वस्तुतः एक मिला-जुला परिवार है जिसका प्रत्येक सदस्य अपनी विशिष्टता को बिना खोए समष्टिगत एकता की श्री-वृद्धि करता है । जीवन के प्रति समन्वयकारी उदार दृष्टि, सहिष्णुता और जीओ तथा जीने दो के सिद्धांत भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं हैं ।

मानव-संस्कृतियों की महान धाराएं मूल भारतीय संस्कृति की जाह्नदी में आकर मिलती रहती हैं, उसे गति तथा नवजीवन प्रदान करती रहती हैं । जड़ता और रूढ़िवादिता का शैवाल नवीन सांस्कृतिक विचारधाराओं से छांटता रहा है । इसीलिए उसका प्रवाह न तो कभी टूटा है न वह गड्ढे में भरे जल के समान स्थिर अथवा गतिहीन हुआ है । आज भी वह संक्रांति के दौरे से गुजर रही है और अपने आप को समयानुकूल बनाने की दिशा में प्रयत्नशील है ।

भारत की एकता को बनाने में जितना योग इतिहास ने दिया है उसको स्थिर बनाने में उतना ही योग यहां के भूगोल का भी रहा है । उत्तर में अजय हिमवान और तीन ओर से गंभीर सागर से घिरा रहने के परिणामस्वरूप भारतीय प्रायद्वीप अपनी सांस्कृतिक एकता को मज़बूत करने में सफल हो सका है । समय-समय पर दुर्दांत समूहों के भारत पर आक्रमण हुए, किंतु सप्तसिंधु की निर्मल धाराओं में निमज्जन करने के पश्चात् वे समूह भारतीय महा जीवन में घुलमिल कर एकमेल हो गए । भारत की मिट्टी, यहां का अन्न-जल, यहां का वातावरण कुछ ऐसा प्रभावकारी है कि यहां जो आया वह यहीं का हो गया ।

हमारे देश में 15 विकसित भाषाएं हैं । इन भाषाओं की अपनी अपनी साहित्य-सांस्कृतिक परंपराएं हैं । इन परंपराओं के निर्माण में वेद, उपनिषद्,

आस्तिक दर्शन, महाभारत, रामायण और पुराणों का महत्वपूर्ण योगदान है। पुराण साहित्य ने भारतीय कवियों की कल्पनाओं को नूतन सृजन की प्रेरणा दी है । रामायण और महाभारत ने नैतिक आदर्श प्रदान किए हैं तथा वेदों और उपनिषदों ने कवियों को जीवन दृष्टि प्रदान की है । इसलिए भारतीय भाषाओं और साहित्य के द्वारा भिन्नता में एकता का प्रतिपादन संभव हो सका है ।

एक रामायण को ही लीजिए । उसमें उत्तरापथ और दक्षिणापथ की सांस्कृतिक इकाइयों में सेतुबंध का प्रयास तो किया ही गया है, साथ ही कोल-किरात और अरण्यवासी जनजातियों की सांस्कृतिक छटा का भी उसमें महत्वपूर्ण योगदान है । राम भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप हैं । राम के व्यक्तितत्व में कुछ ऐसा आकर्षण है कि भोली भाली जनजातियां उनके प्रति अनायास आत्मसमर्पण कर देतीं हैं ।

भारतीय कवियों को राम के धर्मविग्रह ने इतना आकृष्ट किया कि प्रायः सभी भाषाओं के कवियों ने उस विग्रह की अवतारणा अपनी अपनी भाषाओं में करके अपने आप को तथा अपनी भाषा को समृद्ध किया है। तमिल भाषा में कम्बन, तेलुगु में रंगनाथ और भास्कर, कन्नड़ में नाग चंद्र और मलयालम में एषुत्तच्छन ने राम-कथाएं रचीं । उत्तरापथ की भाषाओं में तुलसी का रामचरितमानस हिंदी का वेद है, धर्मशास्त्र, नीतिग्रंथ है और है आध्यात्मिक जिज्ञासा के पारितोष का प्रमुख आलोक स्थान। इसी प्रकार मराठी के मोरो पंत की रामायण, बंगला के कृतवास की रामायण, असमिया के माधव कंदिल की रामायण और ओड़िया के सरलदास और बलराम दास की रामायणे घर-घर में पढ़ी जाती हैं । लोकगीतों और सामाजिक उत्सवों पर राम-सीता, लक्षमण के गीत सारे देश में गाये जाते हैं ।

रामायण के समान ही महाभरात का प्रचार भी देश व्यापी है ।राष्ट्रीय जीवन की शायद ही कोई समस्या रही हो जिसके समाधान का उपाय महाभारत में न खोजा गया हो । भारत की प्रत्येक भाषा में कहानी, नाटक, प्रबंध काव्य, खंडकाव्य आदि विभन्न साहित्यिक विधाओं में महाभारत की

कहानी गाई गई है । सामाजिक जीवन की नवीन समस्याओं का समाधान भी महाभारत के आधार पर अथवा महाभारत के माध्यम से खोजने का प्रयास किया गया है । भारतीय संस्कृति एकता के सूत्र में बांधे रखने में रामायण और महाभारत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

भारत ने सांस्कृतिक ह्रास के दिन भी देखे हैं । भारतीय जीवन में सदा वसंत की बहार और शरद की शीतल चांदनी ही नहीं छिटकी रहीं। बाह्य आक्रमणों के लूथपेड़े और आंतरिक संघर्षों के शिशिर की झंझा के हड्डियों को कंपा देने वाले झोंके भी उसने सहे हैं । किंतु जैसे पुरवा के झोंके लू से झुलसी हुई वसुंधरा को नवजीवन का संदेश देते हैं उसी प्रकार भारत की मिट्टी समय-समय पर ऐसे महापुरुषों, संतों, सुधारकों को जन्म देती रहती है जिनके उपदेशों की पियूष वर्षा से सामाजिक कलह का विष शांत हो रहा है । भारतीय संस्कृति की उदारता बहुत कुछ इन्हीं संतों की देन है ।

महावीर, गौतम बुद्ध, शंकर, रामानुज, नानक, कबीर, ज्ञानदेव, तुलसी जैसे अनेक नामों की सूची प्रस्तुत की जा सकती है जिन्होंने भारतीय संस्कृति की डगमगाती हुई नैया की पतवारों को थामा और उसे अनुकूल दिशा प्रदान की । भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसका सात्तय अथवा अक्षुण्ण प्रवाह है । इस पृथ्वी पर अनेक महान संस्कृतियाँ उपजीं, फली-फूलीं और विनष्ट हो गईं । उनका अब केवल नाममान शेष बचा है । किंतु भारतीय संस्कृति समय के थपेड़ों को झेलती हुई आज भी प्रवाहमान है। भारतीय संस्कृति की नमनीयता तथा परिवर्तनशीलता का विश्लेषण करते हुए डा० सी. पी. रामस्वामी अय्यर "हिंदू धर्म और संस्कृति के मौलिक तत्व" में लिखते हैं:

"भारतीय संस्कृति बिना प्राचीन विचारों को खोए प्रत्येक नवीन विचार को आत्मसात कर सकती है, जिसका अंतिम परिणाम यह होता है कि विभिन्न और कभी-कभी विरोधी सांस्कृतिक प्रतिच्छवियां, धर्म और भाषाएं आपस में सम्मिश्रित और समन्वित होकर एक जीवन-व्यवस्था में सुग्रथित हो जाती हैं ।"

वर्तमान समय में भारतीय जीवन और संस्कृति एक संक्रमणशील युग से गुज़र रही है । एक ओर वैज्ञानिक भौतिकवादी और औद्योगिक विकास है जो जीवन और संस्कृति के परंपरागत मूल्यों को यदि पूरी तरह नकार नहीं रहा तो उनके सामने प्रश्न चिन्ह अवश्य लगा रहा है । दूसरी ओर हमारी समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा है । अत: आशंका इस बात की है कि हम नवीन को बिना स्वीकार किए कहीं प्राचीन को भी न खो बैठें और त्रिशंकु के समान अधर में लटकने वाले बन जाएं । दूसरी ओर भारतीय संस्कृति और जीवन-पद्धति पर अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव भी तेज़ी से पड़ रहा है । आज का नवशिक्षित युवक धनवान पाश्चात्य देशों की अंधी नकल करने में उलझ रहा है । उसे न तो अपनी संस्कृति की महान परंपरा का ज्ञान है और न राष्ट्र के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का ही ठीक-ठीक एहसास है । इसलिए नवीन और प्राचीन में सामंजस्य की जितनी आवश्यकता आज है उतनी कदाचित् प्राचीन युगों में नहीं रही हो । कारण, आज की दुनिया के जीवन की गति इतनी तेज़ हो गई है, मूल्य और मान्यताएं इत्तने शीघ्र परिवर्तित हो रही हैं कि इस वात्याचक्र के मार्ग की खोज करना कठिन हो गया है । अत: हमें समसामयिक समस्याओं से जूझना जितना आवश्यक है उतना ही अपने आपको पहचानना भी ।

भारतीय संस्कृति के निर्णायक घटक

भौगोलिक परिवेश

भारत का संक्षिप्त परिचय:

अंग्रेज़ी शासन से मुक्त होने के साथ (15 अगस्त, 1947 ई.) ही प्राचीन भारत को दो भागों (भारत, पाकिस्तान पश्चिमी, पूर्वी, आज बंगला देश) में विभक्त होना पड़ा । राजनैतिक दृष्टि से भारत, पाकिस्तान तथा बंगला देश चाहे तीन अलग-अलग देश क्यों न हो, किंतु इतिहास तथा भूगोल की दृष्टि से तीनों देश एक ही उपमहाद्वीप "भारतवर्ष" के अंग हैं । इस प्रकार भारत की भौगोलिक सीमा (तीनों देशों सहित) 8'-7'

उत्तरी अक्षांस, 61'—96' पूर्वी देशांतर के बीच लगभग 3000 किलोमीटर लंबी और 3000 किलोमीटर चौड़ी है । इस प्रकार क्षेत्रफल में यह भू ग्रेटब्रिटन से लगभग 15 गुना है ।

इस विशाल भूभाग की बृहत्तर भारत के रूप में कल्पना की जाती रही है । वैदिक साहित्य में पृथ्वी सूक्तों एवं नदी सूक्तों में आर्य देश की भौगोलिक एकता तथा अखंडता का परिचय मिलता है । पुराण काल में संकल्प के समय प्रत्येक भारतवासी अपने स्नान या दान के संकल्प –वाक्य में देश, काल तथा कर्म एक साथ योग कर स्वयं को वृहत्तर भारत का एक प्राणीय बतलाकर गर्व का अनुभव करता था ।

महाकवि कालिदास ने शिव की अष्टमूर्तियों की उपासना के प्रति जो अपना विशेष आग्रह दिखाया है । उसका प्रमुख कारण है कि कालिदास के हृदय में अखंड भारत का प्रतिबिंब प्रतिक्षण निवास करता था । स्वतंत्र भारत के राष्ट्रगीत में भी यही भौगोलिक एकता प्रदर्शित की गई है । प्राचीन भूगोलवेत्ताओं ने भारतवर्ष को "चतुः संस्थान-संस्थितम्" कहा है। अर्थात इसके पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम में महासागर हैं तथा उत्तर में हिमवर्त पर्वत धनुष के आकार में फैला हुआ है । विष्णु पुराण में इसी तथ्य को इन शब्दों में प्रकट किया गया है--

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्ष तद् भारतं नाम भारतीय यत्र संततिः ।।

अर्थात् वह देश जो कि समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित है, "भारत" के नाम से पुकारा जाता है, जहां की संतान (वंशज) "भारती" कहलाती है । आर. सी. मजूमदार के अनुसार "आध्यात्मिक पंडितों, राजनीतिज्ञों तथा कवियों के मानस में एकता की यह भावना सर्वदा प्रस्तुत थी । उन लोगों ने हिमालय से लेकर समुद्र तक विस्तृत सहस्र योजन भूमि को एक ही सार्वभौम सम्राट का राज्य होने योग्य लिखा है तथा उन राजाओं का यशोगान किया है जिन्होंने अपने राज्य के उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में सेतुबंध रामेश्वर तक तथा पूर्व में ब्रह्मपुत्र की तराई से लेकर पश्चिम में सिंधु के सात मुखों के बाहर की भूमि तक फैलाने

का प्रयत्न किया है ।"

वैदिक काल से लेकर 18वीं सदी तक भारत में अनेक एकराट्, चक्रवर्ती, महाराजाधिराज की उपाधियां धारण करने वाले प्रतापी सम्राट हुए हैं । अश्वमेध तथा दिग्विजय का आयोजन इस दिशा में सफलता प्राप्त करने के लिए होता था । महान राजनीतिज्ञ चाणक्य के अनुसार हिमालय से समुद्र तक फैले प्रदेश के अधिकारी को "चक्रवर्ती" कहा जाता था । दिनकर के अनुसार धर्म की दृष्टि से सारा भारत आरंभ से ही संसार के सभी प्रमुख धर्मों की सम्मिलित भूमि रहा है । प्रत्येक भारतीय चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, सिक्ख या ईसाई, विदेशियों की दृष्टि में भारतीय है । देश के इतिहास के प्रत्येक युग में एक न एक भाषा सर्वसाधारण का प्रतिनिधित्व करती हुई भारत को एक राष्ट्र के रूप में बांधती रही है । इस देश के निवासियों तथा बाहर से आने वाली प्रजातियों के मध्य इस ढंग से मिश्रण हुआ है कि आज उनको बिलकुल अलग-अलग कर सकना अत्यंत कठिन है । अतः नस्ल तथा भाषा की विविधता के होते हुए भी प्रायः संपूर्ण भारत के निवासी एक प्रकार की सामाजिक रचना रखते हैं । इस प्रकार हमारे देश में विविधता तथा विभिन्नताओं के होते हुए भी एक अटूट एकता युगों से चली आ रही है । इस एकता को बनाए रखने वाले उपकरण ये रहे--धर्म प्रचारक तथा संत पर्यटक छात्र, महत्वकांक्षी सम्राट, धार्मिक यात्राएं, सर्वसामान्य तथा धार्मिक क्रियाकलाप, संस्कारों की भाषा, यातायात के विविध साधन ।

भारत के इस सामाजिक राजनैतिक सांस्कृतिक आर्थिक इतिहास को देश की भौगोलिक स्थिति ने पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है । सत्य तो यह है कि भारत के इतिहास के विविध पक्षों को ठीक प्रकार से समझने के लिए भारत की भौगोलिक स्थिति को ठीक प्रकार से समझना ही नहीं, अनिवार्य भी है ।

भारत की भौगोलिक स्थिति

भारत के प्राकृतिक मानचित्र पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर निम्नलिखित

此为试读,需要完整PDF请访问: www.ertongbook.com

भौगोलिक स्थिति का परिचय मिलता है:

1. स्थिति--यह देश एशिया महाद्वीप के दक्षिण के दो प्रायद्वीपों(अरब और हिंद-चीन)के मध्य स्थित है । इसके पश्चिम में अरब प्रायद्वीप तथा पूर्व में हिंद-चीन प्रायद्वीप है ।

2. आकार--अत्यंत विशाल आकार वाला यह देश एक छोटा महाद्वीप(उपमहाद्वीप)तक कहा जाता है ।

3. सीमा--यद्यपि समय-समय पर इस विशाल देश की राजनैतिक सीमाएं परिवर्तित होती रही हैं किंतु इसकी सुनिश्चित भौगोलिक या प्राकृतिक सीमाएं इतिहास के आरंभ काल से आज तक अपरिवर्तित हैं । इसके उत्तर-पूर्व, उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम में हिमालय की पर्वतमालाएं हैं तथा दक्षिण-पूर्व, दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम में समुद्र(बंगाल की खाड़ी, हिंद महासागर, अरब सागर) हैं जिनमें अनेक द्वीप पुंज हैं ।

4. प्राकृतिक विभाग--विशाल भारत को प्राकृतिक दृष्टि से प्रमुख पांच भागों में विभक्त किया जाता है:

(1) उत्तर का पर्वतीय या हिमाचल प्रदेश, (2) उत्तर की नदियों का समतल तथा उपजाऊ मैदान, (3) राजस्तान का मरुस्थल, (4) विंध्य पर्वतमाला तथा दक्षिण का पठारी प्रदेश, (5) पश्चिमी तथा पूर्वी तटीय मैदान और सागर स्थित द्वीप ।

5. धरातल--भारत के उपर्युक्त प्राकृतिक विभागों के धरातल में पर्याप्त वैषम्य है । संसार की सर्वोच्च पर्वत-चोटियां, विस्तृत विशाल समतल मैदान, ऊंचानीचा पठारी भूभाग तथा अपार बालुकामय भूभाग इस देश में वर्तमान हैं । इन विविध प्रकार के धरातलों में विभिन्न प्रकार की मिट्टियां पाई जाती हैं: नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी, काली मिट्टी, पीली मिट्टी, लाल मिट्टी तथा बलुई मिट्टी ।

6. जलवायु--भारत की जलवायु "मानसूनी" वर्ग की होते हुए भी पर्याप्त विविधतापूर्ण है । देश के विभिन्न भागों के तापक्रम तथा वर्षा में काफ़ी भिन्नता पाई जाती है । शीत, ऊष्ण तथा शीतोष्ण प्रकार की जलवायु से मुक्त इस देश की सामान्यत: गर्म देशों में गणना की जाती

है ।

7. वनस्पति तथा खनिज--जलवायु तथा भूमि की विविधता के आधार पर यहां के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां(वन, घास, झाड़ियां) पाई जाती हैं । देश के विभिन्न भूभागों में विविध प्रकार की खनिज संपदा भरी पड़ी है ।

भौगोलिक स्थिति का भारतीय जीवन पर प्रभाव

भारतीय भौगोलिक स्थिति ने भारतीय जीवन को विविध रूपों में प्रभावित किया है । भौगोलिक स्थिति की भिन्नता में यहां के निवासियों के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, दर्शन, राजनीति, साहित्य आदि को विशेष रूप से प्रभावित किया है । यहां की भौगोलिक विभिन्नताओं ने यहां के इतिहास तथा संस्कृति को विशेष मोड़ दिया है । आ. सी. मजूमदार, दत्त तथा राय चौधरी के अनुसार संसार के अन्य देशों की भांति अधिक अंशों में भारतीय इतिहास का क्रम भौगोलिक स्थिति से निर्धारित है । इस देश के प्रत्येक प्रादेशिक विभाग, जिसे प्रकृति ने बांध रखा है, की अलग-अलग कहानी है । विभिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियों का भारतीय जीवन पर जो अच्छा-बुरा, एकांगी या सर्वांगीण प्रभाव पड़ा है उसे अलग-अलग देखने का प्रयास किया जाएगा ।

स्थिति, आकार तथा सीमा का प्रभाव

भारत की मध्यवर्ती स्थिति का प्रभाव उसके अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र पर पड़ा है । प्राचीन काल से ही भारत का पश्चिमी तथा पूर्वी एशिया के देशों(अरब, फ़ारस, अफ़गानिस्तान, लंका, बर्मा, कंबोडिया, चीन आदि) के साथ कूटनीतिक, व्यापारिक तथा सांस्कृतिक संबंध चला आया है । दस देश के विशाल आकार के कारण विभिन्न भागों के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन में बड़ी भिन्नता रही है । आकार की विशालता ने भारतीयों के खान-पान, वेश-भूषा, बोल-चाल, आचार-विचार, व्यवहार आदि जीवन के विविध क्षेत्रों में काफ़ी वैविध्य उत्पन्न कर दिया है । इस विविधता को एकता

में परिणित करनेवाला तत्व भौगोलिक सीमा है । शताब्दियों से एक निश्चित भू-भाग में रहने के कारण विभिन्न प्रजातियों(वन-प्रजाति, द्रविड़, आर्य, ईरानी, यूनानी, शक, यूची, हूण, मुसलमान, यूरोपीय) तथा विभिन्न धर्मों के होते हुए भी भारतीय वेश-भूषा, आचार-विचार, रीति-रिवाज तथा खान-पान में काफ़ी साम्य है ।

प्राकृतिक विभागों का प्रभाव

भारत के प्राकृतिक विभागों की भूमिका प्राचीन भारत के इतिहास के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण रही है । हिमालय की गुणगान भारतीय साहित्य में हिम और शांति के निवास-स्थान के रूप में किया जाता रहा तो विंध्याचल को बहुत दिनों तक उत्तर तथा दक्षिण के मध्य विभाजन-रेखा के रूप में स्वीकार किया जाता रहा । प्रत्येक प्राकृतिक विभाग का भारतीय जन-जीवन तथा इतिहास पर उसके अनुरूप प्रभाव पड़ता रहा ।

हिमालय प्रदेश

इस पर्वतीय प्रदेश का भारतीय जीवन के लगभग सभी पक्षों(राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक) पर गहरा प्रभाव पड़ा है। उत्तरी सीमा की 650 कि. मी. लंबी, अति उच्च तथा हिमाच्छदित पर्वतमाला एक प्रबल प्रहरी तथा संरक्षक का कार्य करती रही है । इस पर्वतमाला की अगम तथा दुर्गम ऊंचाइयों ने प्रायः विदेशी आक्रमणकारियों को भारत पर आक्रमण करने के लिए हतोत्साहित किया है । किंतु उत्तर-पश्चिमी भाग के चौड़े पर्वतीय भागों ने भारत-वासियों के सम्मुख सीमा की सुरक्षा तथा बाह्य आक्रमणों की समस्या को सदैव प्रस्तुत किया है । भारत पर हुए अनेक विदेशी आक्रमणों तथा विदेशी शासन के लिए ये पर्वतीय मार्ग बहुत कुछ उत्तरदायी कहे जा सकते हैं ।

यह प्रदेश समस्त उत्तरी मैदानी भूभाग को उत्तर की शीतल तथा शुष्क हवाओं से सुरक्षा प्रदान करता है । इस प्रदेश की कृपा से मानसूनी हवाएं देश की सीमा से बाहर नहीं जा पातीं और इस प्रकार बर्फ, वर्षा के

पानी से बनी हुई नदियां अपने साथ उपजाऊ मिट्टी लाकर समस्त उत्तरी भारत को उर्वर बनाती रही हैं । इस प्रदेश में पाये जानेवाले प्रचुर खनिज पदार्थ तथा वन-संपदा ने भारत के आर्थिक जीवन को उच्च्व बनाने में बड़ा योगदान दिया है ।

भारतीयों के सामाजिक, दार्शनिक, नैतिक तथा आर्थिक विकास में हिमालय ने विशेष प्रभाव डाला है । हमारे ऋषि, मुनि हिमालय की कंदराओं में जाकर चिंतन करते तथा समाधि लगाते रहे और इसके उत्तुंग, निर्मल शिखरों से जीवन में उत्साह ग्रहण करते रहे । इस प्रदेश में अनेक रमणीय, दर्शनीय तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक स्थान है । यथा मसूरी, नैनीताल, रानीखेत, शिमला, श्रीनगर, शिलौंग आदि ।

उत्तरी मैदान

पंजाब से लेकर बंगाल तक फैले हुए इन उर्वर मैदानों का जितना व्यापक तथा गहरा प्रभाव भारत के इतिहास तथा भारतीय जीवन के विविध पक्षों(राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, तथा सांस्कृतिक) पर पड़ा है, उतना किसी अन्य भौगोलिक परिस्थिति में नहीं । उपजाऊ प्रदेश होने के कारण एक ओर यह भूभाग युगों तक विदेशी आक्रमणकारियों के आकर्षण का केंद्र बना रहा, तो दूसरी ओर यहां के लोगों के पास पर्याप्त अवकाश प्राप्त होने के कारण साहित्य, कला, दर्शन के उत्कर्ष को अवसर मिलता रहा । इसीलिए संसार-प्रसिद्ध विश्वविद्यालय(तक्षशिला, नालंदा) यहां स्थापित हो सके । समस्त भारत को प्रभावित करने वाले आर्य ग्रंथ शास्त्र, स्मृति, पुराण तथा बौद्ध और जैन ग्रंथों का अधिकांश इसी भूभाग की देन है। बड़े-बड़े मंदिर, मस्जिद, राजभवन तथा विश्वविख्यात ताज, तख्तताउस इसी भूभाग पर निर्मित हुए । लगभग सभी धार्मिक क्रांतियों या धर्मसुधार के आंदोलनों का प्रचार-प्रसार इसी क्षेत्र से हुआ ।

बड़े-बड़े साम्राज्यों का उत्थान तथा पतन इन्हीं मैदानों में हुआ है । बड़े-बड़े निर्णायक युद्धों(कुरुक्षेत्र, पानीपत, तरावड़ी, प्लासी आदि) का स्थान ये मैदान ही रहे हैं । बड़ी-बड़ी राजधानियों(लाहौर, दिल्ली, आगरा, पाटलिपुत्र)

का गौरव इन्हीं मैदानों में चमका है । आर्यों की चतुर्वर्ण-व्यवस्था, चार आश्रम, संयुक्त परिवार प्रथा का प्रादुर्भाव भी यहां हुआ, साथ ही छूआछूत की भावना का अंकुर भी इन मैदानों में पल्लवित हुआ । सिंचाई की सुविधा के कारण यहां के लोगों का मुख्य पेशा कृषि और पशुपालन रहा है । नदियों के जल तथा समतल मैदान के कारण यहां यातायात की सुविधा रही है । अत: व्यापार और उद्योग-धंधों की प्रगति होने के कारण यह प्रदेश धन-धान्य पूर्ण रहा है । भारत को सोने की चिड़िया के रूप में देखनेवाले विदेशियों की निगाहें इन्हीं मैदानों पर टिकती थीं । इस अत्यंत उर्वर प्रदेश के लोगों को जीविकोपार्जन के लिए अधिक संघर्ष नहीं करना पड़ा । अत: वे आरामतलबी तथा विलासी भी रहे हैं ।

मरुस्थल

कच्छ से उत्तर-पूर्व की ओर लगभग 600 कि. मी. लंबे तथा 225 कि. मी. चौड़े क्षेत्र में फैले इस प्रदेश में अरावली की दुर्गम पहाड़ियां हैं जिनके कारण बोलन तथा मकारान की ओर से आनवाले आक्रमणकारियों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था । मरुस्थल विशेषत: अरावली पहाड़ियों को अपना शरणस्थल बना कर राजपूतों ने मध्ययुगीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की रक्षा की थी जिससे हिंदू संस्कृति अपने मूल रूप में सुरक्षित रह सकी । मरुस्थल के कठिन जीवन ने महाराणा प्रताप तथा उनके वंशजों को इतना वीर, निर्भीक, परिश्रमी तथा दृढ़ किया था कि वे एक लंबे अरसे तक मुगलों का सामना करते रहे । राजपूतों के प्रजातीय गुणों(यथा शूरता-वीरता, आन-रक्षा, शत्रु को पीठ न दिखाना, दृढ़ता आदि) का विकास इसी भूभाग में हुआ था । मरुस्थल की कठिनाइयों तथा राजपूतों की बहादुरी के कारण मुसलमान इस भूभाग पर सरलतापूर्वक अपना अधिकार न कर सका ।

पठारी प्रदेश

त्रिभुजाकार इस भू-खंड को विंध्याचल तथा सतपुड़ा-पर्वत श्रेणियों ने

गंगा के मैदान से अलग कर रखा है । पर्वतमाला, दंडकारण्य तथा महाकांत नामक विशाल सघन वनों से आच्छन्न इसकी उत्तरी सीमा सहस्त्र वर्षों तक अगम रही और इस कारण उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के मध्य सांस्कृतिक समागम प्राचीन काल में अधिक नहीं हो सका था । पूर्वी घाट तथा पश्चिमी घाट से घिरा हिमालय से भी पुराना यह भूभाग वर्षा के लिए तरसता रहता है । गर्म जलवायु में बसे यहां के लोगों को सीमित साधनों के सहारे जीविका के लिए बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ता है । इस प्रदेश की भैगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक इतिहास पर काफ़ी गहरा पड़ा है । उत्तरी भारत से युगों तक पृथक् रहने के कारण इस भूभाग में एक ऐसी सभ्यता-संस्कृति(द्रविड़) का विकास होता रहा जो उत्तरी भारत की सभ्यता-संस्कृति(आर्य) से बहुत सी बातों में भिन्न थी । इस प्रदेश में स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व तक छोटे छोटे राज्य विद्यमान रहे जिन्होंने अपने स्वतंत्र अस्तिव को बनाए रखने का सदैव प्रयत्न किया । दक्षिण की भौगोलिक स्थिति के परिणामस्वरूप उत्तरी भारत से बहुत दिनों तक विलग रहने के कारण इस भूभाग के प्रजातीय तत्व, व्यवसाय, भाषाएं, खान-पान, वेशभूषा, सामाजिक रीति-रिवाज, उत्सव, त्योहार, धार्मिक भावनाएं आदि उत्तर भारत से भिन्न रहीं ।

पठारी प्रदेश होने के कारण यहां की भूमि अनुर्वर तथा कृषि के अयोग्य है । जीविकोपार्जन के लिए कठिन पश्रिम करने कारण यहां के लोग परिश्रमशील तथा कर्मठ स्वभाव के हैं । समुद्र के निकट के लोग प्राचीन काल से विदेशों के साथ व्यापार करते रहे हैं । इस भूभाग में उत्तर भारत की अपेक्षा प्रजातीय मिश्रण भी बहुत कम हुआ है ।

तटीय मैदानी प्रदेश

पश्चिमी तथा पूर्वी घाट और समुद्र के मध्य का भूभाग तटीय मैदानी प्रदेश है जहां पर्याप्त वर्षा होती है । यह भूभाग काफ़ी उपजाऊ है अत: घनी आबादी है । पश्चिमी तटीय प्रदेश का उत्तरी भाग कोंकण तथा दक्षिणी भाग मालाबार या केरल कहलाता है । मसालों की उपज के कारण प्राचीन

此为试读，需要完整PDF请访问： www.ertongbook.com